International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2025; 11(2): 99-101
© 2025 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 21-01-2025
Accepted: 17-02-2025

डॉ. आभा द्विवेदी
सहायक आचार्य संस्कृत विभाग
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. आभा द्विवेदी
सहायक आचार्य संस्कृत विभाग
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

वैदिक साहित्य में राष्ट्र की अवधारणा

डॉ. आभा द्विवेदी

DOI: https://www.doi.org/10.22271/23947519.2025.v11.i2b.2593

प्रस्तावना

भारतीय मनीषा ने राष्ट्र की संकल्पना के रूप में वैश्विकचिन्तन को एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आर्ष चिन्तन की चरम परिणति दीप्ति बोधक शब्द राष्ट्र की जीवंत संकल्पना अपने मूलार्थ में शक्ति गति ज्ञान एवं विज्ञान के बहुआयामी विशिष्टताओं से सम्पन्न मानी गयी [१]। जब हम राज्य के रूप में देश को देखते हैं तो राज्य एक राजनीतिक इकाई के रूप में हमारे सामने आती है, जिसमे एक निश्चित भू-भाग पर या भौगोलिक सीमा से घिरा एक क्षेत्र तथा उस भू-भाग पर रहने वाले लोग (जनसंख्या) उनको निर्देशित करने के लिए सरकार तथा उस सरकार की सम्प्रभुता या सत्ता से युक्त एक राजनीतिक इकाई के रूप में राज्य को देखते हैं जबकि राष्ट्र एक ऐसी भावना है जो उस राज्य में रहने वाले लोगों के हृदय में राज्य के मानक तत्वों के प्रति श्रद्धाभाव जगाती है।अपने देश के प्रति भावनात्मक लगाव न केवल देश में निवास करने वाले लोगों के अन्दर होता है अपितु देश की परिधि से बाहर भी इस भावना का विस्तार है। यदि राज्य शरीर है तो राष्ट्र उस शरीर में निवास करने वाली आत्मा का नाम है ।देश के नागरिकों में राष्ट्रभावना का बने रहना ही देश की जीवंतता का प्रतीक है। वैदिक चिंतन में "ऋत्" की तरह ही राष्ट्र की अवधारणा का पल्लवन हुआ जो भारत के सांस्कृतिक जीवन में अद्यावधि सुरक्षित है। इस अवधारणा के अर्थ एवं भवबोध में देश के सर्वांगीण विकास तथा शिक्षा की अर्थवत्ता की व्यापक विचार दृष्टि समाहित है। इसलिए वर्तमान राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र की अवधारणा का चिंतन प्रासंगिक एवं उपयोगी है [२]।

गूढ़ शब्द

ऋत्
निकामे
भास्वान्
द्रष्टव्य
ध्यायते
ओज
अनुप्राणित
संतति:
सुरत्वात्
विश:

विषय विस्तार

राष्ट्र एक वैदिक शब्द है जो पाणिनीय व्याकरण की दो धातुओं प्रथम रा-दाने और दूसरी स्था गति निवृत्तौ धातुओं से बना है। व्याकरणदृष्ट्या व्युत्पत्तिमूलक अर्थ ग्रहण करें तो राष्ट्र एक वैदिक शास्त्र है राजृ-दीप्तौ से दीप्ति अर्थ में ष्ट्रन प्रत्यय का विधान करने से राष्ट्र शब्द बना है। राजृ दीप्तौ (भ्वादिधातारौणाष्ट्रन्) जिसका सामान्य अर्थ – दीप्ति, प्रकाश, शक्ति, गति, चमकना, जगमगाना, सुन्दर प्रतीत होना है [3]। इसीलिए ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है कि राष्ट्र तुमसे पृथक् न हो, तुम राष्ट्र में स्थिर रहो। अविचल रहो और राष्ट्र को धारण करो [4]। अर्थात् हमारे मन, मष्तिष्क हमारे शरीर में बहता हुआ रक्त, चलने वाली प्रति श्वांस सब राष्ट्र भावना से ओतप्रोत हो। उसकी आभा से आलोकित हो । प्रकाश का समानार्थी होने के कारण सूर्य की शक्ति सविता को राष्ट्र का स्वामी (सविता राष्ट्रं राष्ट्रपति:) कहा गया है [५]। वेदों में राष्ट्र शब्द राज्य अथवा साम्राज्य का द्योतक है। ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद तथा ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों में राष्ट्र इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैदिक साहित्य में राष्ट्रि, राष्ट्री, राष्ट्रकाम, राष्ट्रगोप आदि नामों से उल्लिखित हुआ है। राष्ट्र शब्द का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है [६]। ऋग्वेद की ऋचाओं में तो सम्पूर्ण विश्व को ही राष्ट्र के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। राष्ट्र ऋषिचिन्तन का शब्दब्रह्म है जो शब्दार्थ को आलोकित करता है।
पाश्चात्य शब्द नेशन (Nation) इस अवधारणा से बिल्कुल पृथक् प्रतीत होता है [७]। राष्ट्र की उत्पत्ति के साथ ही राष्ट्र की शक्ति एवं समृद्धि की कामना की भावना का भी उदात्त चित्रण वैदिक वाङ्मय में किया गया है।

राष्ट्र की चेतना एवं भावना वैदिक वाङ्मय की सनातन परम्परा से ही जीवित रहती है। जिस प्रकार हमारा वैदिक वाङ्मय सनातन है उसी प्रकार हमारा राष्ट्र भी सनातन है। अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में राष्ट्र का अर्थ विस्तार, भाव-बोध स्वरूप तथा राष्ट्र के निर्माण में आवश्यक तत्वों का व्यापक चिन्तन हुआ है। वैदिक ग्रन्थों में राष्ट्र शब्द की अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। यहाँ श्री (श्री वै राष्ट्रम्) क्षत्र (क्षत्रं हि राष्ट्रं) वाक् (वाग्वै राष्ट्री, विश (राष्ट्राभि वै विशः) तथा सविता (सविता राष्ट्रं राष्ट्रपति का राष्ट्र के समानार्थी के रूप में उल्लेख है। जिसके अन्तर्गत ओज, तेज, आयु, रूप, नाम, कीर्ति, सत्य, अन्न इष्ट,यज्ञ, प्रज्ञा, पशु इन सभी का समावेश कर उनके प्रति रक्षा, सम्मान संरक्षण संवर्धन एवं श्रेष्ठभाव ही राष्ट्र की भावना एवं धारणा का आधार है।राष्ट्र के स्वरूप निर्माण में तप और बल का विशेष महत्व है जो राष्ट्र की धारणा एवं सेवा की कसौटी मानी जाती है। भारतीय संस्कृति की मूल्यपरकता में इन तत्त्वों का विशेष महत्त्व माना गया है। इसलिए सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में ब्रह्मवर्चस्व बली और तेजस्वी राष्ट्र की कामना की गयी हे एवं ऋषि चिन्तन का आधार भी यहीं है। वैदिक चिन्तन में एक सजीव इकाई के रूप में राष्ट्र की अवधारणा को स्वीकार करते हुए शुक्ल यजुर्वेद में सत्यराज परिचय मंत्र में राजा की पीठ को राष्ट्र, श्री- शिर, पथ-मुख कान्ति-केश, राजा-प्राण, सम्राट- अमृत तथा ओज को क्रमशः मित्र और बल के रूप में चिह्नित किया गया है। शिक्षा तथा सर्वाङ्गीण विकास का भाव राष्ट्र की भावना को पुष्ट करता है क्योंकि जहाँ तप और बल का प्राधान्य है वहीं श्री और कान्ति का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देगा।वस्तुतः राष्ट्र की इसी अवधारणा में भाता, भूमि, भारती वाक् भारत और भारतवर्ष की अवधारणा समाहित है क्‍योंकि इन सभी मूल्यों से युक्त' भारत' एक राष्ट्र की सभी श्रेष्ठता को धारण किये हुए है।इसीलिए राष्ट्र की अवाप्ति के लिए शुक्ल अजुर्वेद में आहुतियां दी गयी हैं। शुक्ल यजुर्वेद का यह मंत्र राष्ट्र की अवधारणा का मूर्त स्वरूप प्रस्तुत करता है।

आब्राह्मण ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आ राष्ट्रे राजन्य: शूर: इषत्योऽतिव्याधि:महारथो जायताम् दोग्ध्रीधेनुर्वोढाऽनड्वान,
आशु: सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णूरेथेष्ठा: समेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जयताम् निकामे
निकामे नः पर्सन्यो बर्षतु फलवन्तो न औषधय: पच्यन्ताम्
योगक्षेमो न: कल्पताम् ॥

प्रत्युत मन्त्र में राष्ट्र के समृद्धि की कामना करते हुए कहा गया है कि ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी हों, झत्रिय पराक्रमी हों, धेनु दुधारु हो, युवा शसक्त हों, बादल अपने जल के द्वारा धनधान्य से उक्त बनावें इस प्रकार सशक्त राष्ट्र का निर्माण हो। राष्ट्र यज्ञ के द्वारा समुद्भूत है। उसकी सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था और धार्मिक व्यवस्था भी यज्ञों के सिंहान्त पर ही अवलम्बित है [८]। यज्ञ प्रकृति अन्य व्यवस्था विकृति है। यज्ञों में होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा ये चार अंग होते हैं। वैसे ही राष्ट्र के भी चार अंग राजा, मन्त्रिपरिषद. सेना और प्रजा होते हैं। राष्ट्र की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रजापति ने यज्ञों के माध्यम से उन सभी वस्तुओं की उत्पति की जिनका प्रयोजन प्रजा और राजा को होता है। वैदिक राष्ट्र की अवधारणा की एक विशेषता यह भी है कि वहाँ कोई भी प्रजा रोगी और दीन दु:खी न हो क्योंकि स्वस्थ सुन्दर बुद्धिमान धार्मिक कर्तव्यपरायण प्रजा ही स्वान्य राष्ट्र की स्थापना कर सकती है।वैदिक राष्ट्र की अवधारणा में जो वसुधैव कुटुम्बकम् "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया: के उद्घोष हमारा दिग्दर्शन करते हैं।" वसुधैव कुटुम्बकम् को उदात भावना से अनुप्राणित वेदों में भौगोलिक भेद से विभक्त किसी भूखण्ड अपवा देश के विशेष सीमा को राष्ट्र की महनीय संज्ञा प्रदान की गयी है। इसलिए भूमि राष्ट्र की अवधारणा का प्रथम व सबल आधार है। भूमि को माता तथा स्वयं को उसका पुत्र समझने की सामूहिक चेतना ही राष्ट्र की चेतना का प्रमुख आधार है। राष्ट्रव्यापी मौलिक एकता की प्रतीति के लिए मातृभूमि और जन के मध्य 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्याः' की अनुभूति मातृभूमि के स्वरूप और उस मातृभूमि पर रहने वाले जनसमूह की परस्पर राष्ट्र आवना को अभिव्यक्त करता है। मातृभूमि के प्रति इस श्रेष्ठ भाव को धारण करने वाले भास्वान् भारत के जन 'हिन्दु' कहे गये और राष्ट्र की सांस्कृतिक संज्ञा हिन्दु राष्ट्र के रूप में भारत की पहचान है।विष्णु पुराण [९] तथा वायुपुराण [१०] में इस हिन्दु राष्ट्र हिन्दू-भू की सीमांकित किया गया और उसे पवित्रतम क्षेत्र के रूप में जन-जन के अन्तर्मन में प्रतिष्ठित कर यज्ञभूमि, नदी, भूमि) पार्वत्य प्रदेश तथा भरतग्नि के देश में 'भारत' का लौकिक आभिधान किया गया-

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षवद् भारतं नाम भारती यत्र संतति: ॥

किसी निश्चित भू-भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ एकात्म का करने लगता है, जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ स्थान, परम्परा और महत्वाकांक्षाओं से युक्त होता है। राष्ट्र मात्र भूखण्ड नहीं अपितु उस भूखण्ड पर विकसित संस्कृति तथा भाषा को आत्मसात किये होता है इसलिए जिसमें व्यक्ति निवास करता है उस राष्ट्र की प्रत्येक वस्तु मिट्टी, पर्वत, नदियाँ, जंगल, पशु वहाँ की संस्कृति,परम्परा, रीति-रिवाज, जनमानस भाषा से प्रेम करना, उसे समझना उसके उत्थान और विकास के लिए अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना निरन्तर कार्यशील रहना राष्ट्रीयता है।
अथर्ववेद में कहा गया है –

अहँ राष्ट्र स्यामिवर्गे निजीभूयासमुत्तम:। [११]
अर्थात् राष्ट्र की जनता में मैं अपना निज समझूँ, सभी के विकास की बात सब करें। सब में निज की भावना का विकास होना ही राष्ट्र भावना का उदय है। इस प्रकार एक भौगोलिक एकता के सूत्र में राष्ट्र के अवधारणा की अभिव्यक्ति की गयी तथा पृथ्वी के सभी मानवों को इस देश से चरित्र और ज्ञान की शिक्षा का आह्वान किया गया।अन्य वैदिक ग्रन्थों में राष्ट्र को क्षत्रं [१२] पस [१३], मुष्टि [१४] और अश्वमेध [१५] संज्ञा से भी अभिहित किया गया है।यजुर्वेद के अध्याय 10 के मंत्र 2 से 4 द्रष्टव्य हैं जिनमें ६६बार राष्ट्र या राष्ट्रदा शब्द प्रयुक्त हुआ है।

वृष्णऽउर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि
स्वाहा: कृष्णऽउर्मिरसि
राष्ट्रदा राष्ट्रममुश्मै देहि वृषसेनोऽसि
राष्ट्रं मे देहि
स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुश्मै देहि।
विश्वमृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुश्मै दत्तः।

अथर्ववेद का एक उद्धरण यह है कि जिस राष्ट्र का निर्माण किया है और दुष्टों से रक्षा की है उसके निर्माण के लिए हम अपना त्याग और बलिदान करने को तैयार रहें क्योंकि केवल सीमाओं में बंधे हुए भूमि के टुकड़े को राष्ट्र नहीं कहते । यह तो पृथ्वी के साथ उस पर निवास करने वाले नागरिकों के शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक स्तर तथा चरित्र आचरण व्यवहार आदि की समग्रता का नाम है। समाज में व्याप्त सद्प्रवृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों के दर्पण में ही राष्ट्र का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है अर्थात हमारे मन में राष्ट्र रक्षा के लिए त्याग और बलिदान की भावना रहनी चाहिए। माया, मोह और ममता को त्यागना चाहिए। जब हम राष्ट्रहित को सर्वोपरि समझकर अपने हितों को प्रसन्नता से छोड़ने के लिए तत्पर रहेंगे तभी राष्ट्रऋण से मुक्त हो सकेंगे।राष्ट्र के लिए उसके प्रत्येक व्यक्ति में निष्ठापूर्वक समर्पण और उत्सर्ग की भावना विकसित होती है [१६] भूमि और जन के बाद राष्ट्र की अवधारणा का तीसरा महत्वपूर्ण तत्त्व संस्कृति है। विचार, वाणी और क्रिया की त्रयी इसका आधार है । विचार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है वही उसकी संस्कृति है और संस्कृति राष्ट्र की भावना को चिरस्थायी बनाने के लिए मूलभूत तत्त्व है। अतः राष्ट्र संवर्धन और उसके गौरव का सबसे प्रबल कार्य संस्कृति की साधना है।राष्ट्र की अवधारणा के सम्बन्ध में 'राष्ट्र चिति' [१७] अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है। इसी चिति का विस्तारित रूप राष्ट्र चेतना हैं। जिस राष्ट्र में चिति की अग्नि प्रज्ज्वलित है वही राष्ट्र जीवित है, चैतन्य है और उसी की अस्मिता है। यह आत्मा जिन वैशिष्ट्यों के द्वारा अपना स्वतन्त्र अस्तित्व व भिन्नत्व प्रकट करती है उन्हों पर उस राष्ट्र का अस्तित्व एवं राष्ट्र के कारण उसका जीवन अवलम्बित होता है। इस प्रकार एकात्मभाव जीवन से युक्त समाज ही समाज राष्ट्र है क्योंकि अत्यन्त प्राचीन काल से यहाँ के जनजीवन के हृदय में मातृभूमि के प्रति पवित्र भाव दिव्य मातृभाव, संस्कृति, समाज तथा राष्ट्र के प्रति चैतन्य सेवा एवं समर्पण भाव विद्यमान रहा है। इस चैतन्य भाव को जीवन मूल्यों में परिणत कर समाज जीव एवं जगत के प्रति ईश्वरीय भाव व्यक्त करता आया है। राष्ट्र एक भावना है। जिसके बोध के सम्बन्ध में भारतीय ऋषियों ने अपने प्रत्यक्ष अनुभव को रेखांकित किया है। जब राष्ट्र की भावना का विस्तार होता है तो प्रान्त,

धर्म, जाति तथा अन्य सभी का अन्तर्भाव हो जाता है। राष्ट्र के प्रति हृदय में चेतना जागृत होना एवं भूमि की एकता हमारे लिए वरदान है।भारतीय उत्सव त्यौहार, व्रत, अनुष्ठान, धार्मिक क्रियाएँ, जीवन मूल्य आदि सभी राष्ट्र की व्यापक अवधारणा के विविध पक्ष हैं। राष्ट्र के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए विष्णु पुराण में यह गीत लिखा है-
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे। स्वर्गापवर्गास्तद् हेतुभूते भवन्ति भूय: पुरुषा सुरत्वात [१८]।
वेदों में राष्ट्र की न केवल परिकल्पना ही वर्णित है बल्कि उसके आधारभूत तत्व उपयोगिता, महत्ता तथा उसके प्रति लोगों के दायित्वों एवं कर्तव्यों का भी भली-भाँति उपदेश दिया गया है, जो निश्चय ही उनकी हार्दिक 'राष्ट्रीय भावना' का द्योतक है। उन्होंने अपनी मातृभूमि को तेज और बल से परिपूर्ण उत्तम राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है [१९]।
इसके साथ ही साथ किसी भी राष्ट्र के सर्वाङ्गीण विकास के लिए अनिवार्य है कि उस राष्ट्र में निवास करने वाले सभी वर्गो में परस्पर प्रेम हो।वेदों में ब्रह्म तथा क्षात्र सभी के आपसी सहयोग पर बल दिया गया है।

यत्र ब्रह्मं च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरत: सह ।
तल्लोकं पुण्य प्रज्ञेशं यत्र देवा सहाग्निनाः॥[२०]

हमारे ऋषिजन राष्ट्र प्राप्ति के निमित्त देवों को विविध प्रकार की आहुतियाँ प्रदान करते थे [16]। अश्वमेध और राजसूय यज्ञ राष्ट्र की शक्ति के लिए ही थे। वैदिक ऋषियों का मत था कि सत्य, बृहत (विकास), गहत (नियम) उग्रता (दुर्धर्ष शाक्त) दीक्षा (दक्षता) तप (निष्ठा) का (ज्ञान) सुरक्षित बनाते हैं। यज्ञ क्रियाएँ) राष्ट्र को सुरक्षित बनाते हैं।सर्वविदित है कि किसी राष्ट्र का विकास अभिज्ञान और विकास वहाँ निवास करने वाले लोगों की जनभाषा से होता है। वैदिक संहिताओं से स्पष्ट है कि एल० सारस्वत और भारती नामक उपभाषाएँ विद्यमान थीं। इन्हें सुखदायक कहते हुए भरतश्राम, भारतीय संस्कृति और भारती संस्कृत भाषा को सुरक्षित रखने की कामना की गई है।इसी क्रम में यह भी जान लेना आवश्यक है कि राष्ट्र की अवधारणा का सांस्कृतिक स्वरूप ग्रहण किये बिना उतमराज्य का संगठन नहीं हो सकता।। संस्कृत साहित्य, वेद, पुराण उपनिषद् शास्त्र आदि अनेक ब्रह्मसूत्र आदि का अध्ययन, प्रणयन हमें 'वसुधैव कुटुम्बकम् की प्रेरणा देकर समूचे वसुधा को एक परिवार के रुप में एकसूत्र में बांधने की प्रेरणा देता है।
ऊं 'सहनाववतु, सह नौ भुनक्तौ
सह वीर्यं करवाव है'
'सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:' जैसे उपनिषद्वाक्यों में सम्पूर्ण पृथ्वी के प्रति ममता का भाव और देवी के रूप में लोक जीवन में व्यप्ति, एक ऐसा व्यापक चिन्तन है जिसके कारण भारत भूमि गौरवास्पद तथा वंदनीय कही गयी है। हमारे वेद उपनिषद् एवं महनीय ग्रन्थों में राष्ट्रभावना को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।रामायण के सुन्दरकाण्ड में रावण को देखकर हनुमान की राष्ट्रचिन्ता जाग्रत हो उठती है [२१]। सुन्दरकाण्ड में विभीषण राष्ट्रधर्म के प्रति सजग होकर रावण से दूतवध न करने की बात समझाते हैं।उनका कहना है कि दूतवध राष्ट्रधर्म के विरुद्ध है तथा लोकाचार की दृष्टि से निन्दित कर्म है [२२]। मनु भी आपने चिन्तन में मुख्यतः सांस्कृतिक राष्ट्र की अवधारणा का प्रतिपादन करते हैं जिसका मूलाधार धर्म है। मनु के राष्ट्रचिन्तन का स्वरूप वर्तमान की तरह संमुचित न होकर विस्तृत है क्योंकि मनु के चिन्तन में राष्ट्र बर्तमान की तरह एक राजनीतिक इकाई नहीं है। उनकी दृष्टि में राष्ट्र एक सार्वभौमिक, सांस्कृतिक इकाई है। राष्ट्र शब्द केवल किसी क्षेत्र विशेष का ही बोध नहीं करता अपितु वह वैश्विक परिदृश्य का परिचायक है। यह एक ऐसे समूह का बोधक है जिसमें प्राणी हित का विचार समाविष्ट होता है।

निष्कर्ष

अन्ततः अध्ययनोपरान्त स्पष्ट होता है कि राष्ट्र केवल सीमाओं में बँधे हुए भूमि के टुकड़ों को नहीं कहते वरन् यह तो पृथ्वी के साथ उस पर निवास करने वाले नागरिकों के शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक स्तर तथा चरित्र, आचरण, व्यवहार आदि की समग्रता का नाम है। भक्तियोग एवं कर्मयोग से उत्पन्न हुई पावन पुण्य धाराओं का नाम राष्ट्र है। समाज में व्याप्त सत्प्रवृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों के दर्पण में ही राष्ट्र का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। किसी भी राष्ट्र का भौतिक स्वरूप वहाँ का भू-भाग, प्रशासन है किन्तु उसका आत्मिक स्वरूप वहाँ का जनमानस है, वहाँ की प्रजा है एवं
- जनमानसोत्थान से राष्ट्रोत्थान हेतु इन्द्रियनिग्रह परमावश्यक है।

गीता में कहा गया है –
ध्यापतो विषयान्पुंस: संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते॥[२३]

सन्दर्भ सूची

1. भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी -पाणिनीय धातुपाठ समीक्षा पृष्ठ -३६८
2. ऋग्वेद -१०/१७३/१
3. अथर्ववेद -२०/१०
4. ऋग्वेद -१०/१७६/२५
5. शतपथ ब्राह्मण -११/४/३/१४, तैत्तिरीय ब्राह्मण -२/५/७/४
6. ऋग्वेद -१०/१७३/१-५
7. भानुप्रतापशुक्ल सम्पादक – राष्ट्र, जानकी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण -१९६१
8. तेषां मनुष्यवद्देवताभिधानम् निरुक्त-१/१/२
9. विष्णु पुराण -२/३/१
10. वायु पुराण -४५/७५
11. अथर्ववेद -३/१५/२
12. क्षत्रं हि राष्ट्रं -ऐतरेय ब्राह्मण -७/२२
13. राष्ट्रं पस: - तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/९/७/४
14. राष्ट्रं मुष्टि: - शतपथ ब्राह्मण -१३/२/९/७
15. राष्ट्रं वा अश्वमेध:तैत्तिरीय ब्राह्मण – १३/१/६/३
16. अथर्ववेद -१२/१/५
17. हरदास महामहोपाध्याय बालशास्त्री – वैदिक राष्ट्र दर्शन -भाग-१,सुरुचि प्रकाशन नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण पृष्ठ-११
18. विष्णु पुराण २/३/२४
19. अथर्ववेद १२/१/४
20. डॉ. हरनारायण दीक्षित – संस्कृत साहित्य में राष्ट्रभावना पृष्ठ -५४
21. वाल्मीकि रामायण-५/४९/७(१७-२०) गीता प्रेस गोरखपुर भाग-२
22. तत्रैव
23. श्रीमद्भगवद्गीता २/६२